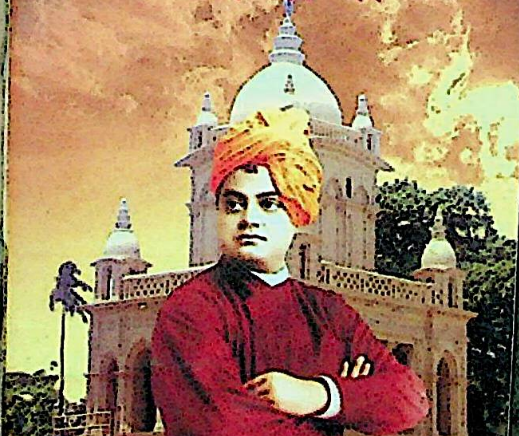
स्वामी विवेकानन्द की वाणी



स्वामी विवेकानन्द की वाणी

रामकृष्ण मठ
नागपुर

प्रकाशक :
स्वामी ब्रह्मस्थानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
रामकृष्ण आश्रम मार्ग
धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प ५४

वर्ष १९५५ से २०१४ तक : ३,००,०००
प्रथम संस्करण : १९५५
द्वितीय संस्करण : १९८७
तृतीय संस्करण : २००६
षष्ठम पुनर्मुद्रण : ४.६.२०१६
मुद्रित प्रतियाँ : ३००००

मुद्रक :
लक्ष्मी ऑफसेट, नागपुर

मूल्य : रु. ५.००

तृतीय संस्करण की भूमिका

स्वामी विवेकानन्दजी के कतिपय मर्मस्पर्शी एवं उद्बोधक उद्गारों से समन्वित यह पुस्तिका सर्वप्रथम *स्वामी विवेकानन्द सभा* (धर्मपुरम्, जिला कोयम्बतूर, तमिलनाडु) ने अंग्रेजी में *टॉनिक्स टू द सॉल* के नाम से प्रकाशित की थी। इस सभा के अनुरोध पर श्रीरामकृष्ण मठ, मयलापुर, चेन्नै ने सन् १९४५ में प्रथम बार उक्त पुस्तिका का अंग्रेजी में *दस स्पेक विवेकानन्द* नामक जो पुनर्प्रकाशन किया था, उसी को रामकृष्ण मठ, नागपुर ने पहले सन् १९५० से सन् १९८५ तक *विवेकानन्दजी के उद्गार* के नाम से तथा तदुपरान्त सन् १९८७ से सन् २००४ तक *स्वामी विवेकानन्द की वाणी* के नाम से हिन्दी में प्रकाशित किया था।

कुछ सुधार, पुनर्विन्यास एवं स्वामीजी के संक्षिप्त जीवन के समावेश सहित श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नै द्वारा अंग्रेजी में *दस स्पेक विवेकानन्द*नामक जो नूतन संस्करण सन् १९८२ में प्रकाशित हुआ था, उसी के हिन्दी अनुवाद रूप में *स्वामी विवेकानन्द की वाणी* नामक यह नवीन संस्करण पाठकों के समक्ष रखते हमें प्रसन्नता हो रही है।

पाठकों की सुविधा एवं रुचिवर्धन हेतु प्रस्तुत पुस्तिका में प्रत्येक उद्धरण के अन्त में मूल स्रोतों (यथा, *विवेकानन्द साहित्य*) की खण्ड-संख्या सहित पृष्ठ-संख्या भी दी गई है। आशा है, *विवेकानन्द की वाणी* सभी को सदुद्देश्यों के प्रति प्रेरित करती रहेगी।

नागपुर
दिनांक : १७.१०.२००६

— प्रकाशक

दो शब्द

(प्रथम संस्करण)

स्वामी विवेकानन्दजी के कुछ स्फूर्तिप्रद उद्‌गारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत पुस्तक के रूप में रखते हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मूल अँगरेजी पुस्तक 'Thus Spake Vivekananda' के हिन्दी रूपान्तर की माँग हिन्दी भाषी जनता काफी अरसे से कर रही थी। प्रस्तुत प्रकाशन इसी अँगरेजी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है।

इसमें की अधिकांश कविताओं के अनुवाद का श्रेय हिन्दी जगत् के लब्धप्रतिष्ठ लेखक एवं कवि पं. शुकदेवप्रसादजी तिवारी (श्री विनयमोहन शर्मा), एम.ए., एलएल.बी., प्राध्यापक, नागपुर महाविद्यालय को है। उनके इस बहुमूल्य कार्य के लिए हम उनका हार्दिक आभार मानते हैं।

हमारा विश्वास है, पाठक इस नए प्रकाशन से अवश्य लाभान्वित होंगे।

नागपुर

दिनांक : १.११.१९५५

— प्रकाशक

अनुक्रमणिका

नमन

भुक्तिमुक्तिकृपाकटाक्षप्रेक्षणमघदलविदलनदक्षम् ।
बालचन्द्रधरमिन्दुवन्द्यमिह नौमि गुरुविवेकानन्दम्।।

– जिनकी कृपादृष्टि से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं, जो पापसमूह का विनाश करने में निपुण हैं, जो मस्तक पर चन्द्रकला धारण करनेवाले शिवस्वरूप ही हैं एवं जो 'इन्दु' (कवि) के वन्दनीय हैं, उन गुरु विवेकानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द

(एक संक्षिप्त जीवन-विवरण)

हम हनुमान के विचार के बिना श्रीराम के बारे में नहीं सोच सकते, या अर्जुन को याद किये बिना हम श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं कर सकते। इसी प्रकार ईसा तथा सन्त पाल की तरह बुद्ध तथा आनन्द की बात है। यही सम्बन्ध श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के बीच है। क्योंकि यदि एक जल-स्रोत था तो दूसरा उस जल-स्रोत का प्रवाह रूप झरना था।

श्रीरामकृष्ण के लिये ईश्वर एक तथ्य तथा एक वास्तविकता थी। उन्हें ईश्वर के बारे में वादविवाद करने की आवश्यकता नहीं थी। वे दृढ़ विश्वासपूर्वक ईश्वर की पुष्टि कर सकते थे। वे भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के शिखर थे। उनका दृष्टिकोण वैश्विक, उनकी अनुभूति सर्वस्पर्शी, सर्वसमावेशक थी। स्वामी विवेकानन्द उनके प्रधान छात्र, उनके अत्यन्त प्रिय शिष्य, उनके महानतम

उत्तराधिकारी, उनके यथार्थ भाष्यकार तथा अत्यन्त दक्ष कार्यवाहक भी थे।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी, सन् १८६३ में पावन मकर सक्रान्ति के दिन कोलकाता में हुआ था। उनके पिता कोलकाता के प्रसिद्ध वकील विश्वनाथ दत्त थे तथा उनकी माता भुवनेश्वरी देवी अत्यन्त सुसंस्कृत एक कुलीन महिला थीं। माता-पिता ने बच्चे का नाम 'नरेन्द्रनाथ' रखा तथा माता (भुवनेश्वरी देवी) का विश्वास था कि भगवान् शिव के प्रति आन्तरिक प्रार्थना के फलस्वरूप ही इस पुत्र की प्राप्ति हुई है। बालक नरेन्द्रनाथ घर तथा पड़ोस में सभी का दुलारा था तथा अति नटखट तथा फुर्तीला था। उसमें इतना जोश तथा उत्साहपूर्ण ओज था कि घरवालों को उसे वश में करना या उस पर नियन्त्रण रखना अति कठिन था। वह देह से दृढ़िष्ठ तथा बलिष्ठ होकर वर्धित हुआ तथा सभी प्रकार के खेलकूद में निपुण था। खेलकूद की तरह ही वह पढ़ाई में भी उतना ही बढ़-चढ़कर था। वह श्रेष्ठतम अन्तर्जात तथा अर्जित प्रतिभा से मण्डित मेधावी छात्र

था। उसका पठन-पाठन का क्षेत्र व्यापक, ग्रहणक्षमता तीक्ष्ण, स्मरणशक्ति अतिधारणक्षम थी तथा आयु की तुलना में विवेक-विचार योग्यता भी अद्भुत थी। बाल्यकाल से ही वह उच्च आध्यात्मिक चेतना से भरपूर तथा गम्भीर ध्यानमग्नता में रुचि रखनेवाला था; बाल्यावस्था में ही उसमें ऐसी अनेक विलक्षण गहन शक्तियाँ प्रकट हुई थीं जो उसकी आयु के अन्य बालकों में बिल्कुल नहीं थीं। बालक नरेन्द्रनाथ चुनौति का स्वागत करनेवाला था तथा भय का नाम तक नहीं जानता था। विद्यालय तथा महाविद्यालय में ही सैकड़ों विशिष्टताओं तथा उत्कर्षों ने उसे मेधासम्पन्न मनुष्य के रूप में लक्षित कर दिया था।

नरेन्द्रनाथ विचारशील था तथा ईश्वरविषयक प्रश्न उसे व्याकुल किया करता था। उसकी सशक्त बुद्धि केवल क्षीण विश्वास तथा रूढ़िगत आस्था के आधार पर ही बातों को मानने को तैयार नहीं थी। ईश्वर के अन्वेषण में सन्देहग्रस्त यह युवक इधर-उधर भटकता रहा। परन्तु उसका यह प्रयत्न वृथा गया। ईश्वर की खोज में तो वह

लगभग हताश ही हो बैठा था तथा उसने प्रायः यही निष्कर्ष निकाल लिया था कि ईश्वर केवल किसी विक्षिप्त व्यक्ति के विचार की ही उपज है। यह तो हितैषी तथा न्यायपूर्ण नियति ही थी जो उसे श्रीरामकृष्ण के पास ले गयी।

उसने महापुरुष (श्रीरामकृष्ण) से पूछा कि क्या उन्होंने ईश्वर को देखा है? श्रीरामकृष्ण ने स्मित हास्यपूर्वक उत्तर दिया कि न केवल उन्होंने ईश्वर के दर्शन किये हैं परन्तु वे नरेन्द्र को भी ईश्वर के दर्शन करा सकते हैं। इस प्रकार महाविद्यालय में शिक्षित बुद्धिवादी ने इस साधारण तथा सीधे-सादे मन्दिर-पुजारी में अपना गुरु तथा उद्धारक पाया।

लगभग पाँच वर्ष नरेन्द्रनाथ श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में रहा तथा उनके द्वारा शिक्षित तथा प्रशिक्षित हुआ। प्रबल अन्तर्मथन की इस अल्पावधि के पश्चात् नरेन्द्रनाथ ने एक परमहंस की समस्त अतिमानवीय प्रज्ञा को आत्मसात कर लिया था तथा वह उनके स्वरूप के अनुरूप रूपान्तरित हो गया।

१८८६ में श्रीरामकृष्ण की महासमाधि हुई, उस समय नरेन्द्रनाथ २३ वर्ष का भी नहीं हुआ था। श्रीरामकृष्ण के ध्येय को कार्यान्वित करने हेतु नरेन्द्र के युवा कन्धों पर विराट भार आ पड़ा। यह आसान कार्य नहीं था, परन्तु यदि कोई इसे निष्पादित करने में सक्षम था तो वह नरेन्द्रनाथ ही था जो इसके लिये उपयुक्त मस्तिष्क तथा बल-सामर्थ्य से युक्त था। उसने गृहत्याग कर दिया, अब स्वामी विवेकानन्द बन गया, उन्होंने एक मठ की स्थापना की जहाँ वे तथा उनके गुरुभ्रातागण तपश्चर्यादि जारी रख सकें। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी होकर भारत की प्रव्रज्या की। उन्होंने अपनी मातृभूमि का विश्लेषण करते हुए, उसकी समस्याओं को प्रत्यक्ष समझते हुए तथा उसके पुनरुत्थान के लिये समाधान ढूँढते हुए उत्तरी छोर में हिमालय से लेकर दक्षिणी छोर में कन्याकुमारी तक भ्रमण किया। यह तीर्थयात्रा उनके जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक थी तथा उनके भ्रमणकाल में आनेवाले अनेक प्रसंग उनके व्यक्तित्व की बहुमुखी प्रतिभासम्पन्नता तथा

अप्रतिरोध्य आकर्षण की मनोहारी झलकियाँ हैं।

सन् १८९३ के मई मास में स्वामी जी शिकागो में सितम्बर मास में होनेवाली विश्वधर्ममहासभा में भाग लेने के लिये भापचलित जलयान द्वारा रवाना हुए। उन्हें औपचारिक रूप से निमन्त्रित या उनका नाम प्रतिनिधियों की सूचि में शामिल नहीं किया गया था। कुछ कठिनाई के पश्चात् उन्होंने धर्ममहासभा में सम्मिलित होने का सुभीता कर लिया; सम्मिलित न होने देने की किसी भी कठिनाई की तुलना में वे कहीं अधिक प्रदीप्तप्रतिभा-सम्पन्न थे। परन्तु तब यह प्रथम वक्तव्य में ही दिग्विजय की बात थी। जब गरिमापूर्ण सभा को सम्बोधित करने की उनकी बारी आयी तब वे उषाकाल के सूर्य की भान्ति उठे तथा 'अमेरिका की बहिनो तथा भाइयों', ये शब्द कहे। उस हार्दिक पुकार ने विश्वधर्ममहासभा तथा पश्चिमी जगत् को मन्त्रमुग्ध कर दिया। वे संकीर्णता में जकड़े धर्म-पन्थों तथा बौने मतवादों से उपर उठकर समन्वय तथा सार्वभौमिकता के बारे में बोले। उनका सन्देश मानो दमघुटे लोगों के लिये जीवनश्वास था। वे व्याख्यान करते

हुए तथा पश्चिमी देशों के निवासियों को शिक्षित करते तथा उन्हें भारतीय दर्शन के अध्ययन में सहायता करते हुए कई मास तक अमेरिका में रहे। तत्पश्चात् वे इग्लैंड तथा यूरोप गये। वे पौर्वात्य तथा पाश्चात्य के बीच आपसी समझ के लिये सेतु बने।

सन् १८९७ में स्वामीजी भारत लौटे। समूचा राष्ट्र एकीकृत होकर उनके स्वागत के लिये उठा। भारतीय जनता ने उन्हें आदि शंकराचार्य के नूतन अवतार के रूप में पाया जो मातृभूमि को ओजपूर्ण तथा जीवनशक्ति से स्फूर्त करने को उठ खड़ा हुआ था। स्वामीजी ने अपने देशवासियों को भारतीय राष्ट्रीय आदर्श – त्याग – के महान् आदर्श का स्मरण कराया; उन्होंने भारतीयों के हृदयों में यह बात प्रविष्ट करा दी कि भारत में जन्म-प्राप्ति परमसौभाग्य की बात है तथा उन्हें बताया कि किस प्रकार आध्यात्मिक संस्कृति ही भारत के अनश्वर अस्तित्व का रहस्य है। उन्होंने भारत को 'प्रबुद्ध भारत' बना दिया।

परन्तु वे सलाह देने या उपदेश देने तक ही सीमित

नहीं रहे। वे कुशल संगठनकर्ता थे, तथा उन्होंने अपने गुरुदेव के ध्येय की निरन्तरता को सुनिश्चित बनाये रखने के लिये एक संगठन की स्थापना करनी चाही। इसलिये उन्होंने रामकृष्ण मठ तथा मिशन की स्थापना की जिसका मुख्यालय कोलकाता के निकट बेलुड़ मठ है। इस संस्था का उद्देश्य है – 'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च' अर्थात् अपनी मुक्ति एवं संसार का कल्याण भी।

स्वामी विवेकानन्द अभी चालीस वर्ष के भी नहीं हुए थे कि वे महासमाधि में लीन हो गये। परन्तु उनकी आयु की गणना सौर वर्षों के आधार पर नहीं होनी चाहिये। लगभग एक दशक के लोकार्पित कार्य द्वारा ही उन्होंने मानसचेतना में ऐसे विचार आरोपित कर दिये जिनके सम्पूर्ण क्रियान्वयन के लिये डेढ़ हजार वर्ष लग सकते हैं। उनके जीवनकार्य का एक तो भारतीय पक्ष है तथा दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष है, इन दोनों क्षेत्रों में उनका योगदान बेजोड़ है।

□□□

विवेक-सूत्र

प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है।

वाह्य एवं अन्तःप्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।

बस, यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान-पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य वाह्य क्रियाकलाप तो उसके गौण ब्योरे मात्र हैं।

बल

* उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्देश देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन में मैंने यही महाशिक्षा प्राप्त की है – उपनिषद् कहते हैं, हे मानव, तेजस्वी बनो, वीर्यवान बनो, दुर्बलता को त्यागो। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.१३२)*

* जो हमारी जाति को शक्तिहीन कर सकती हैं, ऐसी दुर्बलताओं का प्रवेश हममें विगत एक हजार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो विगत एक हजार वर्ष से हमारे जातीय जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य था कि किस प्रकार हम अपने को दुर्बल से दुर्बलतर बना सकेंगे। अन्त में हम वास्तव में हर एक के पैर के पास रेंगनेवाले ऐसे केंचुओं के समान हो गये हैं कि इस समय जो चाहे वही हमको कुचल सकता है। *(वि.सा.५.१३३)*

* हे बन्धुगण, तुम्हारी और मेरी नसों में एक ही रक्त का प्रवाह हो रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी

जीवन-मरण है। मैं तुमसे कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं। उपनिषदों में ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त संसार पुनरुज्जीवित, सशक्त और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। (*विवेकानन्द साहित्य*, ५.१३३)

* समस्त जातियों को, सकल मतों को, भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के दुर्बल, दुःखी, पददलित लोगों को स्वयं अपने पैरों खड़े होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्वर में उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीन्ता – दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मंत्र हैं। (५ १३३-३४)

* मैं जो चाहता हूँ वह है लोहे की नसें और फ़ौलाद के स्नायु जिनके भीतर ऐसा मन वास करता हो, जो कि वज्र के समान पदार्थ का बना हो। बल, पुरुषार्थ, क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज। (*विवेकानन्द साहित्य*, ५.३९८)

* समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है, तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो, यह विश्वास करो।

मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। आजकल हममें से अधिकांश जैसे अपने को अधपागल समझते हैं, तुम अपने को वैसा मत समझो। इतना ही नहीं, तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुममें सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है, उसे प्रकट करो। (५.१७८)

* तुम्हारे देश के लिए वीरों की आवश्यकता है – वीर बनो। ... चट्टान की तरह दृढ़ रहो। सत्य की हमेशा जय होती है। ... भारत को नव विद्युत्-शक्ति की आवश्यकता है, जो जातीय धमनी में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न कर सके। ... साहसी बनो, साहसी बनो – मनुष्य सिर्फ़ एक बार ही मरा करता है। मेरे शिष्य कभी भी किसी भी प्रकार से कायर न बनें। ... मैं कायरता को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। अति गम्भीर बुद्धि धारण करो। बालबुद्धि जीव कौन क्या कह रहा है, उस पर तनिक भी ध्यान न दो। उदासीनता! उदासीनता! उदासीनता! ... हमेशा याद रखो – आँखें दो होती हैं और कान भी दो, परन्तु मुख एक ही होता है। ... सभी बड़े-बड़े कार्य

प्रवल विघ्नों के मध्य ही हुये होते हैं। हे वीर, स्मर पौरुषमात्मनः, उपेक्षितव्याः जनाः सुकृपणाः कामकांचनवशगाः – 'हे वीर, अपने पौरुष का स्मरण करो, कामकांचनासक्त दयनीय लोगों की उपेक्षा ही उचित है।' (*विवेकानन्द साहित्य*, ३.३२३,३४४,३४४; ४.३०२,३४६; २.३४८,३४९,३५०)

* किन्नाम रोदिषि सखे त्वयि सर्वशक्तिः
आमन्त्रयस्व भगवन् भगदं स्वरूपम्।
त्रैलोक्यमेतदखिलं तव पादमूले
आत्मैव हि प्रभवते न जडः कदाचित्।।

– हे सखे, तुम क्यों रो रहे हो? सब शक्ति तो तुम्हीं में है। हे भगवन्, अपना ऐश्वर्यमय स्वरूप विकसित करो। ये तीनों लोक तुम्हारे पैरों के नीचे पड़े हैं। जड़ की कोई शक्ति नहीं – प्रवल शक्ति आत्मा की ही है।

(*विवेकानन्द साहित्य*, ३.३११-१२)

* क्षीणा स्म दीनाः सकरुणा जल्पन्ति मूढा जनाः
नास्तिक्यन्त्विदन्तु अहह देहात्मवादातुराः।

– जो लोग देह को आत्मा मानते हैं वे मूढ़जन ही

करुण कण्ठ से कहते हैं – हम क्षीण हैं, हम दीन हैं; यह नास्तिकता है। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.३१२)*

* हमारे राष्ट्र के लिए इस समय कर्मतत्परता तथा वैज्ञानिक प्रतिभा की आवश्यकता है। ... महान् तेज, महान् बल तथा महान् उत्साह की आवश्यकता है। अबलापन से क्या यह कार्य हो सकता है? ... उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः – 'उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है।' *(वि. सा., ४.४०७, ४०९, ५.४०३)*

* पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है – आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त धैर्य चाहिए, तभी महान् कार्य सम्पन्न होगा। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.४०३)*

* वेदान्त पाप स्वीकार नहीं करता, भ्रम स्वीकार करता है। और वेदान्त कहता है कि सबसे बड़ा भ्रम है – अपने को दुर्बल, पापी, हतभाग्य कहना – यह कहना कि मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं है, मैं यह नहीं कर सकता, मैं वह नहीं कर सकता, आदि आदि। *(वि.सा., ८.७)*

* बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मरण। बल

ही अनन्त सुख है, अमर और शाश्वत जीवन है, और दुर्बलता ही मृत्यु ... बचपन से ही उनके मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार प्रविष्ट हो जायँ, जिनसे उनकी यथार्थ सहायता हो सके, जो उनको सबल बना दें, जिनसे उनका कुछ यथार्थ हित हो। (९.१७७, २.२०)

* दुर्बलता ही संसार में समस्त दुःख का कारण है, इसीसे सारे दुःख-कष्ट पैदा होते हैं। हम दुर्बल हैं, इसीलिए इतना दुःख भोगते हैं। हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-ठगी तथा इस प्रकार के अनेकानेक दुष्कर्म करते हैं। दुर्बल होने के कारण ही हम मृत्यु के मुख में गिरते हैं। जहाँ हमें दुर्बल करनेवाला कोई नहीं है, वहाँ न मृत्यु है, न दुःख। (*वि.सा.*, २.१८६)

* अतः बल ही एक आवश्यक बात है। बल ही भव-रोग की दवा है। धनिकों द्वारा रौंदे जानेवाले निर्धनों के लिए बल ही एकमात्र दवा है। विद्वानों द्वारा दबाये जानेवाले अशिक्षितों के लिए बल ही एकमात्र दवा है, और अन्य पापियों द्वारा सताये जानेवाले पापियों के लिए भी वही एकमात्र दवा है। ([illegible])

* अतएव उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर लो – यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है। अतएव इस ज्ञानरूप शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों अपना भविष्य गढ़ डालो।

(विवेकानन्द साहित्य, २.१२०-२१)

* सारे समय – हम रोगी हैं – यह सोचते रहने से हम स्वस्थ नहीं हो सकते, उसके लिए औषध आवश्यक है। ... मनुष्य को सदैव उसकी दुर्बलता की याद कराते रहना अधिक सहायता नहीं करता, उसको बल प्रदान करो, और बल सदैव निर्बलता का चिंतन करते रहने से नहीं प्राप्त होता। दुर्बलता का उपचार सदैव उसका चिंतन करते रहना नहीं है, वरन् बल का चिंतन करना है। *(विवेकानन्द साहित्य, ८.११.११)*

* इस ऐहिक जगत् में, अथवा आध्यात्मिक जगत् में भय ही पतन तथा पाप का कारण है। भय से ही दुःख होता है, यही मृत्यु का कारण है तथा इसी के कारण

सारी बुराई होती है। और भय होता क्यों है? – आत्मस्वरूप के अज्ञान के कारण। हममें से प्रत्येक सम्राटों के सम्राट् का भी उत्तराधिकारी है।(*वि. सा.*, ५.५७)

* समझ लो कि एक दुर्वलता शब्द से ही सब पापों और सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का निर्देश हो जाता है। सारे दोषपूर्ण कार्यों की मूल प्रेरक दुर्वलता ही है। दुर्वलता के कारण ही मनुष्य सभी स्वार्थों में प्रवृत्त होता है। दुर्वलता के कारण ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है; दुर्वलता के कारण ही मनुष्य अपना सच्चा स्वरूप प्रकाशित नहीं कर सकता। (*विवेकानन्द साहित्य*, ५.३१६)

* हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस माँ-पेशियों और मजबूत स्नायु वाले शरीरों की। आवश्यकता है इस तरह के दृढ़ इच्छा-शक्तिसम्पन्न होने की कि कोई उसका प्रतिरोध करने में समर्थ न हो। आवश्यकता है ऐसी अदम्य इच्छा-शक्ति की, जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो। यदि यह कार्य करने के लिए अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, सदा सब तरह से मौत का सामना करना पड़े, तो

भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा। *(वि.सा., ५.८६)*

* हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और 'मर्द' बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वांगसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी – जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे जहर की भाँति त्याग दो, उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.११९-२०)*

* हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है – आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दौर्बल्य।

दुर्वल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को वलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवकों को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो – यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबॉल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यंत साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण, मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि कंकड़ कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। वलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्ठों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे। तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.१३७)*

* हमें खून में तेजी और स्नायुओं में बल की आवश्यकता है – लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु

चाहिए, न कि दुर्बलता लानेवाले वाहियात विचार।

(विवेकानन्द साहित्य, ५.१७२)

* नीतिपरायण तथा साहसी बनो, अन्तःकरण पूर्णतया शुद्ध रहना चाहिए। पूर्ण नीतिपरायण तथा साहसी बनो – प्राणों के लिए भी कभी न डरो। धार्मिक मत-मतान्तरों को लेकर व्यर्थ में माथापच्ची मत करो। कायर लोग ही पापाचरण करते हैं, वीर पुरुष कभी भी पापानुष्ठान नहीं करते – यहाँ तक कि कभी वे मन में भी पाप का विचार नहीं लाते। प्राणिमात्र से प्रेम करने का प्रयास करो। *(विवेकानन्द साहित्य, १.३५०-५१)*

* मैंने कभी प्रतिशोध की बात नहीं की। मैंने सदा बल की बात की है। हम समुद्र की फुहार की बूँद से बदला लेने की स्वप्न में भी कल्पना करते हैं? लेकिन एक मच्छर के लिए यह एक बड़ी बात है।

(विवेकानन्द साहित्य, १०.२१७)

* काम में लग जाओ। कितने दिनों के लिए है यह जीवन? संसार में जब आये हो, तब एक स्मृति छोड़कर जाओ। वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते

हैं।

(*विवेकानन्द साहित्य, ६ १३०*)

* मेरे बच्चों को सबसे पहले वीर बनना चाहिए। किसी भी कारण से तनिक भी समझौता न करो। सर्वोच्च सत्य की मुक्त रूप से घोषणा कर दो। प्रतिष्ठा के नष्ट हो जाने या अप्रिय संघर्ष होने के भय से पीछे मत हटो। यह निश्चय जानो, यदि तुम प्रलोभनों को ठुकराकर सत्य के सेवक बनोगे, तो तुममें ऐसी दैवी-शक्ति आ जायगी, जिसके सामने लोग तुमसे उन बातों को कहते डरेंगे, जिन्हें तुम सत्य नहीं समझते। यदि तुम बिना किसी विक्षेप के लगातार चौदह वर्ष तक सत्य की अनन्य सेवा कर सको, तो तुम जो कुछ कहोगे, लोग उस पर विश्वास कर लेंगे।

(*विवेकानन्द साहित्य, १.३२७*)

* केवल हमारे ही शास्त्रों में ईश्वर के लिए 'अभीः' विशेषण का प्रयोग किया गया है। हमें 'अभीः', निर्भय होना होगा, तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

(*विवेकानन्द साहित्य, ५.२१२*)

□□□

श्रद्धा

* जो आत्मविश्वास नहीं रखता, वही नास्तिक है। ... तुममें से जिन लोगों ने उपनिषदों में सबसे अधिक सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है, उन्हें स्मरण होगा कि किस तरह वे राजा एक महायज्ञ का अनुष्ठान करने चले थे, और दक्षिणा में अच्छी अच्छी चीजें न देकर अनुपयोगी गायें और घोड़े दे रहे थे और कथा के अनुसार उसी समय उनके पुत्र नचिकेता के हृदय में श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। मैं तुम्हारे लिए इस 'श्रद्धा' शब्द का अंग्रेजी अनुवाद न करूँगा, क्योंकि यह गलत होगा। समझने के लिए अर्थ की दृष्टि से यह एक अद्भुत शब्द है और बहुत कुछ तो इसके समझने पर निर्भर करता है। हम देखेंगे कि यह किस तरह शीघ्र ही फल देनेवाली है। श्रद्धा के आविर्भाव के साथ ही हम नचिकेता को आप ही आप इस तरह बातचीत करते हुए देखते हैं : 'मैं बहुतों से श्रेष्ठ हूँ, कुछ लोगों से छोटा भी हूँ, परन्तु कहीं भी

ऐसा नहीं है कि सबसे छोटा होऊँ, अत: मैं भी कुछ कर सकता हूँ।' *(विवेकानन्द साहित्य, ८.१२, ५.२१२-१३)*

* उसका यह आत्मविश्वास और साहस बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा, – वह समस्या मृत्यु की समस्या थी। इसकी मीमांसा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अत: वह बालक वहीं गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा, और तुम जानते हो कि किस तरह उसने अपना अभीप्सित प्राप्त किया। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.२१३)*

* इस श्रद्धा को तुम्हें पाना ही होगा। पश्चिमी जातियों द्वारा प्राप्त की हुई जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है, क्योंकि वे अपने दैहिक बल के विश्वासी हैं, और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो तो वह और कितना अधिक कारगर होगा? *(विवेकानन्द साहित्य, ५.२१३)*

* इसके लिए हमें श्रद्धा की ही जरूरत है; हमें, यहाँ जितने भी मनुष्य हैं, सभी को इसकी आवश्यकता

है। इसी श्रद्धा को प्राप्त करने का महान् कार्य तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है। हमारे जातीय खून में एक प्रकार के भयानक रोग का वीज समा रहा है, और वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उड़ा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर बनो, श्रद्धा सम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके बाद आ ही जायगा। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.२१३)*

* विश्वास, सहानुभूति – दृढ़ विश्वास और ज्वलन्त सहानुभूति चाहिए। ... श्रद्धा, श्रद्धा! अपने आप पर श्रद्धा, परमात्मा में श्रद्धा – यही महानता का एकमात्र रहस्य है। *(विवेकानन्द साहित्य, १.४०५, ५.८६)*

* कठोपनिषद् का वह महावाक्य स्मरण आता है – 'श्रद्धा' या अद्भुत विश्वास। नचिकेता के जीवन में 'श्रद्धा' का एक सुन्दर दृष्टान्त दिखायी देता है। इस श्रद्धा का प्रचार करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है। मैं तुम लोगों से फिर एक बार कहना चाहता हूँ कि यह श्रद्धा ही मानव जाति के जीवन का और संसार के सब धर्मों का महत्त्वपूर्ण अंग है। सबसे पहले अपने आप पर विश्वास

करने का अभ्यास करो। ... तुम लोग धनी-मानियों और बड़े आदमियों का मुँह ताकना छोड़ दो। याद रखो, संसार में जितने भी बड़े बड़े और महान् कार्य हुए हैं, उन्हें गरीबों ने ही किया है। ... दृढ़चित्त बनो और इससे भी बढ़कर पूर्ण पवित्र और धर्म के मूल तत्त्व के प्रति निष्ठावान बनो। विश्वास रखो कि तुम्हारा भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण है।

(*विवेकानन्द साहित्य*, ५.३३४, ३३५, ३३५)

* हम तो उसी सर्व शक्तिमान परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ हैं – भला हम 'कुछ नहीं' क्योंकर हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं, और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा। ... अतएव, भाइयो! तुम अपनी सन्तानों को उसके जन्म-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना शुरु कर दो। ... आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्व सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले समान रूप से मानते हैं।

(*विवेकानन्द साहित्य*, ५.२६७, २६८, २६८)

* हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था।

इसी आत्मविश्वास रूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हें सभ्यता की उच्च से उच्चतर सीढ़ी पर चढ़ाया था। और, अब यदि हमारी अवनति हुई हो, हममें दोष आया हो तो मैं तुमसे सच कहता हूँ, जिस दिन हमारे पूर्वजों ने अपना यह आत्मविश्वास गँवाया, उसी दिन से हमारी यह अवनति, यह दुरवस्था आरम्भ हो गयी। आत्मविश्वास-हीनता का मतलब है ईश्वर में अविश्वास। (*विवेकानन्द साहित्य,* ५.२६७)

* मैंने पाश्चात्य देशों में जा कर क्या सीखा? ईसाई धर्म-सम्प्रदायों के इन निरर्थक कथनों के पीछे कि मनुष्य पापी था और सदा से निरुपाय पापी था, मैंने उनकी राष्ट्रीय उन्नति का कारण क्या देखा? देखा कि अमेरिका और यूरोप दोनों के राष्ट्रीय हृदय के अन्तरतम प्रदेश में महान् आत्मश्रद्धा भरी हुई है। (*वि.सा.,* ५.८६-८७)

* एक अंग्रेज बालक तुमसे कह सकता है, 'मैं अंग्रेज हूँ, मैं सब कुछ कर सकता हूँ।' एक अमेरिकन या यूरोपियन बालक इसी तरह की बात बड़े दावे के साथ कह सकता है। (*विवेकानन्द साहित्य,* ५.८७)

* हमारे भारतवर्ष के बच्चे क्या इस तरह की बात

कह सकते हैं? कदापि नहीं। लड़कों की कौन कहे, लड़कों के बाप भी इस तरह की बात नहीं कह सकते। हमने अपनी आत्मश्रद्धा खो दी है। ... भारत का कोई भी धर्मसम्प्रदाय ऐसा नहीं है, जो यह सिद्धान्त न मानता हो कि भगवान् हमारे अन्दर हैं और देवत्व सबके भीतर विद्यमान है। हमारे वेदान्त मतावलम्वियों में जो भिन्न भिन्न मतवादी हैं, वे सभी यह स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा में पहले से ही पूर्ण पवित्रता, शक्ति और पूर्णत्व अन्तर्निहित है। (*विवेकानन्द साहित्य*, ५.८७, ८७)

* आत्मविश्वास का आदर्श ही हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकता है। यदि इस आत्मविश्वास का और भी विस्तृत रूप से प्रचार होता और यह कार्यरूप में परिणत हो जाता, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जगत् में जितना दुःख और अशुभ है, उसका अधिकांश गायव हो जाता। (*विवेकानन्द साहित्य*, ८.१२)

* मानव जाति के समग्र इतिहास में सभी महान् स्त्री-पुरुषों में यदि कोई महान् प्रेरणा सबसे अधिक सशक्त रही है तो वह है यही आत्मविश्वास। वे इस ज्ञान

के साथ पैदा हुए थे कि वे महान् बनेंगे और वे महान् बने भी। *(विवेकानन्द साहित्य, ८.१२)*

* धर्म के वारे में कभी झगड़ा मत करो। धर्म सम्बन्धी सभी झगड़ा-फसादों से केवल यह प्रकट होता है कि आध्यात्मिकता नहीं है। धार्मिक झगड़े सदा खोखली बातों के लिए होते हैं। जव पवित्रता नहीं रहती, जव आध्यात्मिकता विदा हो जाती है और आत्मा को नीरस वना देती है, तव झगड़े शुरू होते हैं, इसके पहले नहीं। *(विवेकानन्द साहित्य, ४.१८३)*

* सिद्धान्तों की परवाह मत करो; मतवादों, सम्प्रदायों, चर्चों तथा मन्दिरों की परवाह मत करो; क्योंकि वे, प्रत्येक मनुष्य के अस्तित्व की सारतत्त्व – आध्यात्मिकता की तुलना में नगन्य हैं तथा जिस मनुष्य में यह जितनी अधिक उन्नत होगी, अच्छाई की दृष्टि से वह व्यक्ति उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा। सर्वप्रथम उसे अर्जित करो तथा किसी की निन्दा मत करो। अपने जीवनों द्वारा यह प्रदर्शित करो कि धर्म का अर्थ शब्दों, नामों तथा सम्प्रदायों में नहीं अपितु इसका अर्थ

आध्यात्मिक अनुभूति है।(*रिमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी विवेकानन्द* [अंग्रेजी], पृ. २९१ से अनूदित)

* निष्कपट विश्वास एवं सदुद्देश्य निश्चय ही जय-लाभ करेंगे, और इन दोनों अस्त्रों से सुसज्जित होने पर अल्पसंख्यक लोग भी समस्त विघ्न-बाधाओं को पराजित करने में समर्थ होंगे। (*वि.सा.*, ९.२४७)

* जिन लोगों में सत्य, पवित्रता और नि:स्वार्थपरता विद्यमान हैं, उन्हें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल की कोई भी शक्ति कोई क्षति नहीं पहुँचा सकती। इन गुणों के रहने पर, चाहे समस्त विश्व ही किसी व्यक्ति के विरुद्ध क्यों न हो जाय, वह अकेला ही उसका सामना कर सकता है। (*विवेकानन्द साहित्य*, ९.२४८)

* उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत। (अर्थात् उठो! जागो! तथा लक्ष्यप्राप्ति होने तक रुको मत)।

(*विवेकानन्द साहित्य*, ४.१६६)

□□□

भारत को आह्वान

* ऐ भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए – अपने व्यक्तिगत सुख के लिए – नहीं है; मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट् महामाया की छाया मात्र है; तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। ऐ वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। *(विवेकानन्द साहित्य, ९.२२८)*

* बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं; तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत होकर गर्व

से पुकारकर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशु-शय्या, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्द्धक्य की वाराणसी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्यांण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो कि – 'हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो; माँ, मेरी दुर्वलता और कापुरुपता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ।'

(*विवेकानन्द साहित्य,* ९.२२८)

* ऐ भारत! यही विकट भय का कारण है। हम लोगों में पाश्चात्य जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रवल होती जाती है कि भले-बुरे का निश्चय अव विचार-वुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें, वही बुरा! अफ़सोस! इससे वढ़कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा? ... क्या दूसरों की ही हाँ में हाँ मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, परमुखापेक्षी होकर इन दासों की सी दुर्वलता, इस

घृणित, जघन्य निष्ठुरता से ही तुम बड़े बड़े अधिकार प्राप्त करोगे? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे?

(विवेकानन्द साहित्य, ९.२२६, २२८)

* तुम सदा याद रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओं के उद्देश्य ऐसे महान् हैं, जैसे संसार के किसी और देश की प्रथाओं के नहीं हैं। मैंने संसार में प्राय: सर्वत्र जाति-पाँति का भेदभाव देखा है, पर उद्देश्य ऐसा महिमामय नहीं है। अतएव, जब जातिभेद का होना अनिवार्य है, तब उसे धन पर खड़ा करने की अपेक्षा पवित्रता और आत्मत्याग के ऊपर खड़ा करना कहीं अच्छा है। ... ऊँची जातियों को नीची करने, मनचाहे आहार-विहार करने और क्षणिक सुख-भोग के लिए अपने अपने वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा तोड़ने से इस जातिभेद की समस्या हल नहीं होगी। इसकी मीमांसा तभी होगी जब हम लोगों में से प्रत्येक मनुष्य वेदान्ती धर्म का आदेश पालन करने लगेगा, जब हर कोई सच्चा धार्मिक होने की चेष्टा करेगा, और प्रत्येक व्यक्ति आदर्श

ब्राह्मण बन जायगा। *(विवेकानन्द साहित्य, ५.९५, ९४)*

* तुम आर्य हो या अनार्य, ऋषि-सन्तान हो, ब्राह्मण हो या अत्यन्त नीच अन्त्यज जाति के ही क्यों न हो, इस भारतभूमि के प्रत्येक निवासी के प्रति तुम्हारे पूर्वपुरुषों का दिया हुआ एक महान् आदेश है। तुम सबके प्रति बस एक ही आदेश है कि चुपचाप बैठे रहने से काम न होगा। निरन्तर उन्नति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची से ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगों (पैरिया) को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी।

(विवेकानन्द साहित्य, ५.९४)

* आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सांसारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है।

(विवेकानन्द साहित्य, ५.९३)

* आजकल मूर्ति-पूजा को गलत बताने की प्रथा सी चल पड़ी है, और सब लोग बिना किसी आपत्ति के

उसमें विश्वास भी करने लग गये हैं। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दंडस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरण-कमलों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होंने सब कुछ मूर्ति-पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था, मेरा अभिप्राय श्रीरामकृष्ण परमहंस से है। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्रीरामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न हो सकते हैं, तब तुम क्या पसन्द करोगे – सुधारकों का धर्म, या मूर्तिपूजा? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्तिपूजा के द्वारा इस प्रकार श्रीरामकृष्ण परमहंस उत्पन्न हो सकते हों, तो और हजारों मूर्तियों की पूजा करो। प्रभु तुम्हें सिद्धि दे! जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषों की सृष्टि करो।

और इतने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा की जाती है! क्यों? यह कोई नहीं जानता। शायद इसलिए कि हजारों वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सब की मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा

प्रकट किया जाय, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है; परन्तु यदि उसका अंकन एक सन्दूक के रूप में किया जाय, जिसके दोनों किनारों पर दो देवदूत बैठे हैं और ऊपर बादल का एक टुकड़ा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पंडुक (पेंडकी) का रूप धारण करके आये, तो वह महापवित्र होगा; पर यदि वह गाय का रूप लेकर आये, तो वह मूर्ति-पूजकों का कुसंस्कार होगा! – उसकी निन्दा करो। दुनिया का बस यही भाव है। (*वि.सा.*, ५.११३)

* क्या भारत मर जायगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति सारी मधुर महानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का भी लोप हो जायगा। और उसके स्थान में कामरूपी देव और विलासितारूपी देवी राज्य करेंगी। धन उनका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता, ये ही उनकी पूजा-पद्धति होगी और मानवात्मा उनकी बलिसामग्री हो जायगी। ऐसी दुर्घटना

कभी हो नहीं सकती। क्रियाशक्ति की अपेक्षा सहनशक्ति कई गुना बड़ी होती है। प्रेम का बल घृणा के बल की अपेक्षा अनन्त गुना अधिक है। (वि.सा., ९.३७७)

* भारत का पुनरुत्थान होगा, पर वह जड़ की शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शान्ति और प्रेम की ध्वजा से – संन्यासियों के वेश से – धन की शक्ति से नहीं, बल्कि भिक्षापात्र की शक्ति से सम्पादित होगा। ... अपने अन्तःस्थित ब्रह्म (दिव्यता) को जगाओ, जो तुम्हें क्षुधा-तृष्णा, शीत-उष्ण सहन करने में समर्थ बना देगा। विलासपूर्ण भवनों में बैठे बैठे जीवन की सभी सुखसामग्री से घिरे हुए रहना और धर्म की थोड़ी-सी चर्चा कर लेना अन्य देशों में भले ही शोभा दे, पर भारत को तो स्वभावतः सत्य की इससे कहीं अधिक पहचान है। वह तो प्रकृति से ही अधिक सत्य-प्रेमी है। वह कपटवेश को अपनी अन्तःशक्ति से ही ताड़ जाता है। तुम लोग त्याग करो, महान् बनो। कोई भी बड़ा कार्य बिना त्याग के नहीं किया जा सकता। (९.३८०, ३८१)

* अपने आरामों का, अपने सुखों का, अपने नाम, यश और पदों का – इतना ही नहीं, अपने जीवन तक का – त्याग (समर्पण) करो और मनुष्यरूपी शृंखला से ऐसा पुल बनाओ, जिस पुल पर से करोड़ों लोग इस संसार-सागर को पार कर जायें। समस्त मंगलकारी शक्तियों को एकत्र करो। किस ध्वजा के नीचे तुम अग्रसर हो रहे हो, इसकी परवाह मत करो। तुम्हारी ध्वजा का रंग हरा, नीला या लाल कुछ भी हो, उसकी चिंता मत करो, वल्कि सभी रंगों को एक में मिला दो और उससे उस अत्युज्ज्वल श्वेत रंग का निर्माण करो, जो कि प्रेम का रंग है। हमें तो कर्म ही करना है, फल अपने आप होता रहेगा। यदि कोई सामाजिक वन्धन तुम्हारे ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में बाधक है, तो आत्मशक्ति के सामने अपने आप ही वह टूट जायगा। भविष्य मुझे दीखता नहीं और मैं उसे देखने की चिंता भी नहीं करता। परन्तु मैं अपने सामने यह एक सजीव दृश्य तो अवश्य देख रहा हूँ कि हमारी यह प्राचीन माता पुनः एक वार जाग्रत होकर अपने सिंहासन पर नवयौवनपूर्ण और पूर्व की अपेक्षा

अधिक महा महिमान्वित होकर विराजी है। शान्ति और आशीर्वाद के वचनों के साथ सारे संसार में उसके नाम की घोषणा कर दो। *(विवेकानन्द साहित्य, ९.३८१)*

* अतएव, ऐ मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करते हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तानें आज पशुतुल्य हो गयी हैं? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखों मर रहे हैं, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखों मरते आये हैं? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है? क्या उसने तुम्हें पागल-सा बना दिया है? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो

जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध विसर गये हो? क्या तुमने ऐसा किया है? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है – हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर!

(*विवेकानन्द साहित्य*, ५.१२०-२१)

□□□

हमारी नारियाँ

* स्त्रियों की अवस्था को बिना सुधारे जगत् के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है। *(वि.सा., ४.३१७)*

* हिंदू स्त्रियाँ बहुत ही आध्यात्मिक और धार्मिक होती हैं। कदाचित् संसार की सभी महिलाओं से अधिक। ... आदर्श स्त्रीत्व का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है।

(विवेकानन्द साहित्य, १.३२४-२५, ३२४)

* पहले माँ और उनकी पुत्रियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र – क्या तुम यह समझ सकते हो?

(विवेकानन्द साहित्य, २.३६१)

* माँ की कृपा मुझ पर बाप की कृपा से लाखगुनी है। माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिए सर्वोपरि है।

(विवेकानन्द साहित्य, २.३६१)

* और मैं जानता हूँ कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया है – चाहे उसने उसकी कल्पना ही की हो

– नारी के प्रति उसका आदर पृथ्वी पर अद्वितीय है। ... भारत में जो कुछ पवित्र है, विशुद्ध है, जो कुछ पावन है, उस सबका 'सीता' शब्द से बोध हो जाता है। ... सीता में प्रतिहिंसा कभी नहीं थी। 'सीता बनो!'

(*विवेकानन्द साहित्य*, ४.२६८; ७.१४४-४५, १४७)

* हमारी स्त्रियाँ इतनी विदुषी नहीं, परन्तु वे अधिक पवित्र हैं। प्रत्येक स्त्री के लिए अपने पति को छोड़ अन्य कोई भी पुरुष पुत्र जैसा होना चाहिए। प्रत्येक पुरुष के लिए अपनी पत्नी को छोड़ अन्य सब स्त्रियाँ माता के समान होनी चाहिए।(*विवेकानन्द साहित्य*, १०.२१६)

* पुरुषों के लिए जैसे शिक्षा-केन्द्र बनाने होंगे, वैसे ही स्त्रियों के निमित्त भी स्थापित करने होंगे। ... वर्तमान दशा से स्त्रियों का प्रथम उद्धार करना होगा। सर्वसाधारण को जगाना होगा; तभी तो भारत का कल्याण होगा। (*विवेकानन्द साहित्य*, ६.३७, ३७)

* हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें। उनके लिए यह काम न कोई कर सकता

है और न किसीको करना ही चाहिए। और हमारी भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति इसे करने की क्षमता रखती हैं। (*विवेकानन्द साहित्य, ४.२६७*)

* दूसरी बातों के साथ साथ उन्हें बहादुर भी बनना चाहिए। आज के जमाने में उनके लिए आत्मरक्षा करना सीखना भी बहुत जरूरी हो गया है। देखो, झाँसी की रानी कैसी महान् थीं! (*विवेकानन्द साहित्य, ८.२७७*)

* स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी।

(*विवेकानन्द साहित्य, ५.१४१*)

* वेदों और उपनिषदों में स्त्रियों ने सर्वोच्च सत्यों की शिक्षा दी है और उनको वही श्रद्धा प्राप्त हुई है, जैसी कि पुरुषों को। (*विवेकानन्द साहित्य, ६.२७६*)

* इस तरह की माँ जगदम्बा, अगर अपने देश में, एक हजार तैयार करके मर सकूँ, तो निश्चिन्त होकर मर सकूँगा। तभी तुम्हारे देश के आदमी आदमी कहलाने

लायक हो सकेंगे। (*विवेकानन्द साहित्य,* ३.३०८)

* उस महाशक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए माँ का आविर्भाव हुआ है, और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से जगत् में गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारियों का जन्म होगा। ... शक्ति की कृपा के विना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। (*विवेकानन्द साहित्य,* २.३६०-६१, ३६१)

□□□

सेवा एवं त्याग

* हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे; अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरों को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियों में हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दु:खी और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी, पागल, कोढ़ी, पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। (वि.सा., ५.१४१-४२)

* मनुष्य-देह में स्थित मानव-आत्मा ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है। पशु भी भगवान् के मन्दिर हैं, किन्तु मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है – ताजमहल जैसा। यदि मैं उसकी उपासना नहीं कर सका, तो अन्य किसी भी मन्दिर से कुछ भी उपकार नहीं होगा। *(विवेकानन्द साहित्य, ८.२९)*

* तब प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे, जो दिनोंदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। *(वि.सा., १.४०५)*

* उसीको मैं महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है, अन्यथा वह दुरात्मा है।

(विवेकानन्द साहित्य, ३.३४५)

* जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस आदमी को विश्वासघातक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता! *(विवेकानन्द साहित्य, ३.३४५)*

* क्या तुम अपने भाई – मनुष्यजाति – को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चले हो – ये सब गरीब, दुःखी, दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं हैं? इन्हीं की पूजा

पहले क्यों नहीं करते? गंगा-तट पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो? प्रेम की असाध्य-साधिनी शक्ति पर विश्वास करो। इस झूठ जगमगाहटवाले नाम-यश की परवाह कौन करता है? ... क्या तुम्हारे पास प्रेम है? तब तो तुम सर्वशक्तिमान हो। क्या तुम सम्पूर्णतः निःस्वार्थ हो? यदि हो, तो फिर तुम्हें कौन रोक सकता है? चरित्र की ही सर्वत्र विजय होती है। ईर्ष्या तथा अहंभाव को दूर कर दो – संगठित होकर दूसरों के लिए कार्य करना सीखो। हमारे देश में इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। ... धीरज रखो और मृत्युपर्यन्त विश्वासपात्र रहो। आपस में न लड़ो! रुपये-पैसे के व्यवहार में शुद्ध भाव रखो। ... जब तक तुममें ईमानदारी, भक्ति और विश्वास है, तब तक प्रत्येक कार्य में तुम्हें सफलता मिलेगी। ... जब तक तुम लोगों में भेद-भाव न हो, प्रभु की कृपा से, **रणे वने पर्वतमस्तके वा** – चाहे रण में, चाहे वन में, चाहे पर्वत के शिखर पर – तुम्हारे लिए कोई भी भय नहीं रहेगा। ... जब तक तुम निश्चित रूप से न जान लो कि वह हितकर होगा, तब तक अपने मन का भेद न खोलो।

बड़े से बड़े शत्रु के प्रति भी प्रिय और कल्याणकारी शब्दों का व्यवहार करो। (*विवेकानन्द साहित्य*, ३.३२३, ३२३; ४.२८०, ३६८; २.३४८, ३५०)

* सब प्रकार का विस्तार ही जीवन है और सब प्रकार की संकीर्णता मृत्यु है। जहाँ प्रेम है, वहीं विस्तार है और जहाँ स्वार्थ है, वही संकोच। अत: प्रेम ही जीवन का एकमात्र विधान है। जो प्रेम करता है, वही जीवित है; जो स्वार्थी है, वह मृतक है। अत: प्रेम प्रेम के निमित्त, क्योंकि यह जीवन का वैसा ही एकमात्र विधान है।

(*विवेकानन्द साहित्य*, ४.३१०)

* तुम जो कुछ भी कार्य करते हो, उसे तुम अपने ही भले के लिए करते हो। भगवान् किसी खंदक में नहीं गिर गये हैं, जो उन्हें हमारी या तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है, कि हम अस्पताल बनवाकर या इसी तरह के अन्य कार्य करके उनकी सहायता कर सकें। उन्हीं की आज्ञा से तुम कर्म कर पाते हो। – इसलिए नहीं कि तुम उनकी सहायता करो, बल्कि इसलिए कि तुम स्वयं अपनी सहायता कर सको। क्या तुम सोचते हो कि तुम

अपनी सहायता से एक चींटी तक को मरने से बचा सकते हो? ऐसा सोचना घोर ईश-निन्दा है! संसार को तुम्हारी तनिक भी आवश्यकता नहीं। ... इस 'सहायता' शब्द को मन से सदा के लिए निकाल दो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते। यह घोर ईश-निन्दा है। तुम उनकी पूजा करते हो। ... जब तुम कुत्ते को एक ग्रास खाना देते हो, तब तुम कुत्ते की ईश्वर-रूप में पूजा करते हो। ईश्वर उस कुत्ते में है – कुत्ते के रूप में प्रकट हुआ है। वही सब कुछ है और सबमें है।

(विवेकानन्द साहित्य, ९.१८७, १८८, १८८)

* इस बात के लिए कृतज्ञ होओ कि इस संसार में तुम्हें अपनी दयालुता का प्रयोग करने और इस प्रकार पवित्र एवं पूर्ण होने का अवसर प्राप्त हुआ। ... हमें उसी मनुष्य के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, जिसकी हम सहायता करते हैं – उसे साक्षात् नारायण मानना चाहिए। मनुष्य की सहायता द्वारा ईश्वर की उपासना करना क्या हमारा परम सौभाग्य नहीं है?

(विवेकानन्द साहित्य, ३.५१, ५१-५२)

* दरिद्र व्यक्तियों में हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दु:खी और कंगाल प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी, पागल, कोढ़ी, पापी आदि स्वरूपों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे शब्द बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुहराता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं।

(*विवेकानन्द साहित्य,* ५.१४१-४२)

* लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्निमन्त्र से दीक्षित होकर, भगवान् के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर और गरीबों, पतितों तथा पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस सम्पूर्ण भारत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र उद्धार के सन्देश, सेवा के सन्देश, सामाजिक उत्थान के संदेश और समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे। (*विवेकानन्द साहित्य,* १.४०३)

* चाहिए वैराग्य। तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने बड़े बड़े कार्य करने के लिए संसार का त्याग किया था। वर्तमान समय में ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जिन्होंने अपनी ही मुक्ति के लिए संसार का त्याग किया है। तुम सब कुछ दूर फेंको – यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी दूर रखो – जाओ, दूसरों की सहायता करो।

(विवेकानन्द साहित्य, ५.३२१)

* हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे।

(विवेकानन्द साहित्य, ५.[illegible])

* मुक्ति केवल उसके लिए है जो दूसरों के लिए सर्वस्व त्याग देता है, परन्तु वे लोग जो 'मेरी मुक्ति', 'मेरी मुक्ति' की अहर्निश रट लगाये रहते हैं, वे अपना वर्तमान और भावी वास्तविक कल्याण नष्ट कर इधर-उधर भटकते रह जाते हैं। (*विवेकानन्द साहित्य*, ६.३२७)

* मैंने इतनी तपस्या करके यही सार समझा है कि जीव जीव में वे अधिष्ठित हैं; इसके अतिरिक्त ईश्वर और कुछ भी नहीं। जो जीवों पर दया करता है, वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है। (*विवेकानन्द साहित्य*, ६.२१६)

* भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं : त्याग और सेवा। आप इसकी इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए, और शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा। इस देश में आध्यात्मिकता का झंडा कितना ही ऊँचा क्यों न किया जाय, वह पर्याप्त नहीं होता। केवल इसीमें भारत का उद्धार है। (*विवेकानन्द साहित्य*, ४.२६५)

* जो मनुष्य-जाति की सहायता करना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे अपना सुख और दुःख, नाम और यश एवं सब प्रकार के स्वार्थ की एक पोटली

समुद्र में फेंक दें और तब ईश्वर के समीप आयें। सभी गुरुजनों ने यही कहा और किया है। *(वि.सा., ३.३८७)*

* मैं अपने साथियों की मदद कर सकूँ : बस इतना ही मैं चाहता हूँ। *(विवेकानन्द साहित्य, १०.२२१)*

* यदि भलाई चाहते हो, तो घण्टा आदि को गंगा जी में सौंपकर साक्षात् भगवान् नारायण की – विराट् और स्वराट् की – मानव देहधारी प्रत्येक मनुष्य की पूजा में तत्पर होओ। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.२९९)*

* करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है। *(वि.सा.,१०.४०१)*

* धीरता और दृढ़ता के साथ चुपचाप काम करना होगा। समाचार-पत्रों के जरिये हल्ला मचाने से काम न होगा। सर्वदा याद रखना – नाम-यश कमाना अपना उद्देश्य नहीं है। *(विवेकानन्द साहित्य, १.३९९)*

* जहाँ पर महामारी हुई हो, जहाँ पर जीवों को दु:ख ही दु:ख हो, जहाँ दुर्भिक्ष पड़ा हो, चले जाओ उस ओर। अधिक से अधिक क्या होगा, मर ही तो जाओगे। मेरे तुम्हारे जैसे न जाने कितने कीड़े पैदा होते रहते हैं

और मरते रहते हैं। इससे दुनिया को क्या हानि-लाभ? एक महान् उद्देश्य लेकर मर जाओ। मरना तो है ही; पर अच्छा उद्देश्य लेकर मरना ठीक है! इस भाव का घर घर में प्रचार करो, अपना और देश का कल्याण होगा। तुम्हीं लोग देश की आशा हो। तुम्हें कर्म-विहीन देखकर मुझे बड़ा कष्ट होता है। लग जाओ, काम में लग जाओ। विलम्ब न करो, मृत्यु तो दिनोंदिन निकट आ रही है! 'बाद में करूँगा' कहकर अधिक बैठे न रहो – यदि बैठे रहोगे, तो फिर तुमसे कुछ भी न हो सकेगा।

(विवेकानन्द साहित्य, ६.१३०-३१)

* दूसरों के लिए रत्ती भर काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्ती भर सोचने से धीरे धीरे हृदय में सिंह का-सा बल आ जाता है। तुम लोगों से मैं इतना स्नेह करता हूँ, परन्तु यदि तुम लोग दूसरों के लिए परिश्रम करते करते मर भी जाओ तो भी यह देखकर मुझे प्रसन्नता ही होगी।

(विवेकानन्द साहित्य, ६.१२९)

* गरीबी के इन चिन्हों को छोड़ो। मित्र दृष्टि से

तुम गरीब हो? क्या तुम्हें इस बात का दुःख है कि सोने के लिए मुलायम गद्दे नहीं है और बुलाते ही हाजिर होनेवाले नौकर-चाकर नहीं है? उससे क्या होता है? तुम नहीं जानते, यदि तुम रात-दिन दूसरों की सेवा में अपना खून-पसीना एक कर दो तो जीवन में तुम्हारे लिए असम्भव और असाध्य कुछ नहीं रहेगा।

(विवेकानन्द साहित्य, ८.२८४-८५)

* मृत्युपर्यन्त काम करो – मैं तुम्हारे साथ हूँ, और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है – नाम, यश, भोग, यह सब थोड़े दिन के हैं। संसारी कीड़े की तरह मरने से अच्छा है – कहीं अधिक अच्छा है कर्तव्य क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढ़ो। *(वि.सा., ५.३७१)*

* ईर्ष्या तथा अहंभाव को दूर कर दो – संगठित होकर दूसरों के लिए कार्य करना सीखो। हमारे देश में इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। *(वि.सा., ४.२८०)*

* युवको! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के

तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ। जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथी (भगवान् कृष्ण) के मन्दिर में, जो गोकुल के दीन-हीन ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्धावतार-काल में अमीरों का निमन्त्रण अस्वीकार कर एक वारांगना के भोजन का निमन्त्रण स्वीकार किया और उसे उबारा; जाओ उनके पास, जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महा बलि दो, अपने समस्त जीवन की बलि दो – उन दीन-हीनों और उत्पीड़ितों के लिए, जिनके लिए भगवान् युग युग में अवतार लिया करते हैं, और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं।

(*विवेकानन्द साहित्य, १.४०५*)

* हे भाइयो, हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। हमारे कार्यों पर भारत का भविष्य निर्भर है। देखिए, वह तत्परता से प्रतीक्षा कर रही है। वह केवल सो रही है। उसे जगाइए, और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमंडित और अभिनव शक्तिशाली बनाकर भक्तिभाव से उसे

उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दीजिए।

(विवेकानन्द साहित्य, ५.५०)

* जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे उनकी सन्तान की, विश्व के प्राणि मात्र की पहले सेवा करनी चाहिए। शास्त्रों में कहा भी गया है कि जो भगवान् के दासों की सेवा करता है वही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ दास है। यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिए। ... निःस्वार्थपरता ही धर्म की कसौटी है। जिसमें जितनी ही अधिक निःस्वार्थपरता है वह उतना ही आध्यात्मिक है, तथा उतना ही शिव के समीप। चाहे वह पंडित हो या मूर्ख, शिव का सामीप्य दूसरों की अपेक्षा उसे ही प्राप्त है, ... परन्तु इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य स्वार्थी है, तो चाहे उसने संसार के सब मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किये हों, सारे तीर्थ क्यों न गया हो और रंग भभूत रमाकर अपनी शक्ल चीते जैसी क्यों न बना ली हो, शिव से वह बहुत दूर है। *(वि.सा., ५.३९, ४०, ४०)*

* समस्त उपासनाओं का यही धर्म है कि मनुष्य शुद्ध रहे तथा दूसरों के प्रति सदैव भला करे। वह मनुष्य

जो शिव को निर्धन, दुर्बल तथा रुग्ण व्यक्ति में भी देखता है वही सचमुच शिव की उपासना करता है, परन्तु यदि वह उन्हें केवल मूर्ति में ही देखता है तो कहा जा सकता है कि उसकी उपासना अभी नितान्त प्रारम्भिक ही है। यदि किसी मनुष्य ने एक निर्धन मनुष्य की सेवाशुश्रूषा बिना जाति-पाँति अथवा ऊँच-नीच के भेद-भाव के यह विचार कर की है कि उसमें साक्षात् शिव विराजमान हैं, तो शिव उस मनुष्य से दूसरे एक मनुष्य की अपेक्षा, जो कि उन्हें केवल मन्दिर में देखता है, अधिक प्रसन्न होंगे। (*विवेकानन्द साहित्य, ५.३८-३९*)

* अपनी पूजा के समय परमात्मा के पितृ-भाव को स्वीकार कर लेने से ही क्या लाभ, जब हम अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई न मान सकें? (*विवेकानन्द साहित्य, १.२५७*)

* महावीर के चरित्र को ही तुम्हें इस समय आदर्श मानना पड़ेगा। देखो न, वे राम की आज्ञा से समुद्र लाँघकर चले गये! – जीवन-मृत्यु की परवाह कहाँ? महाजितेन्द्रिय, महाबुद्धिमान, दास्य भाव के उस महान्

आदर्श से तुम्हें अपना जीवन गठित करना होगा। वैसा करने पर दूसरे भावों का विकास स्वयं ही हो जायगा। दुविधा छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य की रक्षा – यही है सफलता का रहस्य! नान्य पन्थाः विद्यतेऽयनाय अर्थात् अवलम्बन करने योग्य और दूसरा पथ नहीं। एक ओर हनुमान जी के जैसा सेवाभाव और दूसरी ओर उसी प्रकार त्रैलोक्य को भयभीत कर देनेवाला सिंह जैसा विक्रम! *(विवेकानन्द साहित्य, ६.१९६)*

* ब्रह्म और परमाणु-कीट तक,
सब भूतों का है आधार
एक प्रेममय, प्रिय,
इन सबके चरणों में दो तन-मन वार।
बहु रूपों से खड़े तुम्हारे आगे,
और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज। यह जीव-प्रेम की ही
सेवा पाते जगदीश। *(वि.सा., ९.३२५)*

* यह जीवन क्षणस्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षणभंगुर हैं। वे ही यथार्थ में

जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीवन धारण करते हैं। वाकी लोगों का जीना तो मरने ही के बराबर है।

(*विवेकानन्द साहित्य,* २.३७१)

* बड़े-वड़े काम विना बड़े स्वार्थ-त्याग के नहीं हो सकते। (*विवेकानन्द साहित्य,* ३.३३७)

* यदि आवश्यक हो, तो सार्वजनीनता के भाव की रक्षा के लिए सब कुछ छोड़ना होगा। (*वि.सा.,* ३.३६०)

* चाहे अपने को नरक में क्यों न जाना पड़े, परन्तु दूसरों की मुक्ति हो। मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं है। (*विवेकानन्द साहित्य,* ३.३००)

* कुछ भी न माँगो, वदले में कोई चाह न रखो। तुम्हें जो कुछ देना हो, दे दो। वह तुम्हारे पास वापस आ जायगा; लेकिन आज ही उसका विचार मत करो। वह हजार गुना हो वापस आयेगा, पर तुम अपनी दृष्टि उधर मत रखो। देने की ताकत पैदा करो। दे दो और बस काम खत्म हो गया। (*विवेकानन्द साहित्य,* ९.१७९)

* 'दान' – दान से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है। सबसे अधम मनुष्य वह है, जिसका हाथ सदा खिंचा

रहता है और जो अपने ही लिए सब पदार्थों को लेने में लगा रहता है; और सबसे उत्तम पुरुष वह है, जिसका हाथ हमेशा खुला रहता है। हाथ इसीलिए बनाये गये हैं कि सदा देते रहो। तुम स्वयं भूखों मर रहे हो तो भी अपने पास का, रोटी का अन्तिम टुकड़ा तक दूसरे को दे डालो। यदि दूसरे को देकर भूख से तुम्हारी मृत्यु भी हो जाय, तो क्षण भर में ही तुम मुक्त हो जाओगे, तत्क्षण तुम पूर्ण हो जाओगे, उसी क्षण तुम ईश्वर हो जाओगे।

(विवेकानन्द साहित्य, ९.११)

* नाम के लिए कौन परवाह करता है? उसे अलग रख दो! यदि भूखों को भोजन का ग्रास देने में नाम, सम्पत्ति और सब कुछ नष्ट हो जायँ तब भी – अहो भाग्यमहो भाग्यम् 'तब भी बड़ा भाग्य है' – अत्यन्त भाग्यशाली हो तुम! हृदय और केवल हृदय ही विजय प्राप्त कर सकता है, मस्तिष्क नहीं। पुस्तकें और विद्या, योग, ध्यान और ज्ञान – प्रेम की तुलना में ये सब धूलि के समान हैं। *(विवेकानन्द साहित्य, ६.३३५)*

* भारतमाता कम से कम एक हजार युवकों का

बलिदान चाहती है – मस्तिष्कवाले युवकों का, पशुओं का नहीं। *(विवेकानन्द साहित्य, १.३९९)*

* त्याग ही असली बात है। त्यागी हुए बिना कोई दूसरों के लिए सोलह आना प्राण देकर काम नहीं कर सकता। त्यागी सभी को समभाव से देखता है; सभी की सेवा में लगा रहता है। वेदान्त में भी तो पढ़ा है कि समभाव से देखो तो फिर एक स्त्री और कुछ बच्चों को अधिक अपना समझकर क्यों मानोगे? तुम्हारे दरवाजे पर स्वयं नारायण दरिद्र के भेष में आकर अनाहार से मृतप्राय होकर पड़े हैं। उन्हें कुछ न देकर केवल अपना और अपने स्त्री-पुत्रों का पेट भाँति भाँति के व्यंजनों से भरना तो पशुओं का काम है। *(वि.सा., ६.१२९-३०)*

* हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमीं संसार के ऋणी हैं, संसार हमारा ऋणी [illegible] सौभाग्य है [illegible]। यह तो हमारा [illegible] कि हम संसार में कुछ कार्य करने का अवसर मिलता है। संसार की सहायता करने से हम वास्तव में स्वयं अपना ही कल्याण करते हैं। *(वि.सा., ३.५८)*

* ऊँचे आसन पर खड़े होकर और अपने हाथ में

दो पैसे लेकर यह मत कहो, 'ऐ भिखारी, ले, यह मैं तुझे देता हूँ।' परन्तु तुम स्वयं इस बात के लिए कृतज्ञ होओ कि तुम्हें वह निर्धन व्यक्ति मिला, जिसे दान देकर तुमने स्वयं अपना उपकार किया। धन्य पानेवाला नहीं होता, देनेवाला होता है। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.५१)*

* संसार में सर्वदा दाता का आसन ग्रहण करो। सर्वस्व दे दो, पर बदले में कुछ न चाहो। प्रेम दो, सहायता दो, सेवा दो; इनमें से जो तुम्हारे पास देने के लिए है, वह दे डालो; किन्तु सावधान रहो, उनके बदले में कुछ लेने की इच्छा कभी न करो। किसी तरह की कोई शर्त मत रखो। ऐसा करने पर तुम्हारे लिए भी कोई किसी तरह की शर्त नहीं रखेगा। अपनी हार्दिक दानशीलता के कारण ही हम देते चलें – ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ईश्वर हमें देता है। *(विवेकानन्द साहित्य, ७.९)*

* प्रेम कभी निष्फल नहीं होता, मेरे बच्चे; कल हो या परसों या युगों के बाद, पर सत्य की जय अवश्य होगी। प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई – मनुष्य जाति – को प्यार करते हो? *(वि.सा. ३.३२३)*

* मुझे मुक्ति और भक्ति की चाह नहीं। लाखों नरकों में जाना मुझे स्वीकार है, वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः – ('वसन्त की तरह लोक का हित करते हुए') – यही मेरा धर्म है। *(विवेकानन्द साहित्य, २.३६३)*

□□□

आत्मसंयम

* पीठ पीछे किसी की निन्दा करना पाप है। इससे पूरी तरह बचकर रहना चाहिए। मन में कई बातें आती हैं, परन्तु उन्हें प्रकट करने से राई का पहाड़ बन जाता है। यदि क्षमा कर दो और भूल जाओ, तब उन बातों का अन्त हो जाता है। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.३९१)*

* यदि तुम्हारे पास कोई व्यर्थ वाद-विवाद के लिए आये, तो नम्रतापूर्वक पीछे हट जाओ। ... तुम्हें सब सम्प्रदाय के लोगों से अपनी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए। जब इन मुख्य गुणों का तुममें विकास होगा तब केवल तुम्हीं महान् शक्ति से काम करने में समर्थ होगे। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.३९२)*

* उदास रहना कदापि धर्म नहीं है, चाहे वह और कुछ भले ही हो। प्रफुल्ल चित्त तथा हँसमुख रहने से तुम ईश्वर के अधिक समीप पहुँच जाओगे। *(वि.सा., ९.११)*

* जीवात्मा की वासभूमि इस शरीर से ही कर्म की

साधना होती है – जो इसे नरककुण्ड बना देते हैं, वे अपराधी हैं और जो इस शरीर की रक्षा में प्रयत्नशील नहीं होते, वे भी दोषी हैं। *(विवेकानन्द साहित्य, १.३६९)*

* किसी अतिप्राकृत (uncanny) वस्तु को पाने की कभी चेष्टा न करो, पैर की अँगुलियों से भी ऐसी वस्तुओं का स्पर्श न करो। *(विवेकानन्द साहित्य, २.३८९)*

* यदि कोई तुम्हारे समीप अन्य किसी साथी की निन्दा करना चाहे, तो तुम उस ओर बिल्कुल ध्यान न दो। इन बातों को सुनना भी महान् पाप है, उससे भविष्य में विवाद का सूत्रपात होगा। दूसरों के दोषों को सर्वदा सहन करना, लाख अपराध होने पर भी उसे क्षमा करना।

(विवेकानन्द साहित्य, ४.३१३)

* यदि आत्मा के जीवन में मुझे आनन्द नहीं मिलता, तो क्या मैं इन्द्रियों के जीवन में आनन्द पाऊँगा? यदि मुझे अमृत नहीं मिलता, तो क्या मैं गड्ढे के पानी से प्यास बुझाऊँ? ... सुख आदमी के सामने आता है, तो दुःख का मुकुट पहन कर। जो उसका स्वागत करता है, उसे दुःख का भी स्वागत करना

चाहिए। (*विवेकानन्द साहित्य, १०.२२०, २२२*)

* किसी को राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता चाहे मिल जाय, पर यदि वह वासनाओं और इच्छाओं का दास है, तो सच्ची स्वतंत्रता का शुद्ध आनन्द वह नहीं जान सकता। (*विवेकानन्द साहित्य, १०.२२२*)

* मन की प्रवृत्ति के अनुसार काम मिलने पर अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति भी उसे कर सकता है। लेकिन सब कामों को जो अपने मनके अनुकूल बना लेता है, वही बुद्धिमान है। कोई भी काम छोटा नहीं है। (६.३५१)

* मनुष्य आज वैसा है, वह प्रकृति से अपनी तद्रूपता का नहीं, वरन् उससे अपने संघर्ष का परिणाम है। (*विवेकानन्द साहित्य, ९.१६४*)

* चाहे कोई कितना भी बुरा क्यों न हो, उसके दोषों की चर्चा मत करो। उससे कभी कुछ लाभ नहीं होता। किसी के दोषों की चर्चा कर तुम उसकी सहायता नहीं करते, तुम उसे ठेस पहुँचाते हो और स्वयं अपने को ठेस पहुँचाते हो। (*विवेकानन्द साहित्य, ४.१८२*)

* जो व्यक्ति ठीक [illegible] नियम [illegible] सकता है, वह

ध्यान भी ठीक तरह से कर सकता है।(वि.सा.,३.२६०)

* जिस मनुष्य ने स्वयं पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, उसके ऊपर बाहर की कोई भी चीज अपना प्रभाव नहीं डाल सकती, उसके लिए किसी प्रकार की दासता शेष नहीं रह जाती। उसका मन स्वतंत्र हो जाता है। और केवल ऐसा ही पुरुष संसार में रहने योग्य है।

(विवेकानन्द साहित्य, ३.६६)

* हम जितने ही शान्तचित्त होंगे और हमारे स्नायु जितने संतुलित रहेंगे, हम उतने ही अधिक प्रेमसम्पन्न होंगे और हमारा कार्य भी उतना ही अधिक उत्तम होगा।

(विवेकानन्द साहित्य, ३.५५)

* तुम्हें एक 'स्वामी' के समान कार्य करना चाहिए, न कि एक 'दास' की तरह। कर्म तो निरन्तर करते रहो, परन्तु एक दास के समान मत करो।

(विवेकानन्द साहित्य, ३.३३)

* अनासक्त होओ; कार्य होते रहने दो -- मस्तिष्क के केन्द्र अपना अपना कार्य करते रहें; निरन्तर कार्य करते रहो, परन्तु एक लहर को भी अपने मन पर प्रभाव

मत डालने दो। संसार में इस प्रकार कर्म करो, मानो तुम एक विदेशी पथिक हो, पर्यटक हो। कर्म तो निरन्तर करते रहो, परन्तु अपने को बन्धन में मत डालो; बन्धन भीषण है। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.३२)*

* निष्क्रियता का हर प्रकार से त्याग करना चाहिए। क्रियाशीलता का अर्थ है 'प्रतिरोध'। मानसिक तथा शारीरिक समस्त दोषों का प्रतिरोध करो, और जब तुम इस प्रतिरोध में सफल होगे, तभी शान्ति प्राप्त होगी। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.१४)*

* जो व्यक्ति अपने प्रति घृणा करने लगा है, उसके पतन का द्वार खुल चुका है, और यही बात राष्ट्र के सम्बन्ध में भी सत्य है। हमारा पहला कर्तव्य है कि अपने प्रति घृणा न करें; क्योंकि आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं में विश्वास रखें और फिर ईश्वर में। *(विवेकानन्द साहित्य, ३.१२)*

* यदि इस समय भारत में कोई महापाप है, तो वह यही ईर्ष्या की दासता है। हर एक व्यक्ति हुकूमत चाहता है, पर आज्ञा पालन करने के लिए कोई भी तैयार

नहीं है; और यह सब इसलिए है कि प्राचीन काल के उस अद्भुत ब्रह्मचर्य-आश्रम का अब पालन नहीं किया जाता। पहले आदेश पालन करना सीखो, आदेश देना फिर स्वयं आ जायगा। पहले सर्वदा दास होना सीखो, तभी तुम प्रभु हो सकोगे।　(*विवेकानन्द साहित्य, ५.३३*)

□□□

छन्दों में उपदेश

* नयन पथराये, हृदय हो शून्य अपना,
छले मैत्री, प्यार हो विश्वासघाती
भाग्य भी सौ आपदाएँ लाद दे सिर
और बीहड़ तम तुम्हारा रोक ले पथ –
प्रकृति की त्योरियाँ चढ़ें,
जैसे अभी वह कुचल देगी,
किन्तु मेरे आत्मन हे, दिव्य हो तुम,
बढ़ो आगे, और आगे,
नहीं दाँयें और बाँयें तनिक देखो,
दृष्टि हो गन्तव्य पर ही। (*वि.सा.*,१०.१७९-८०)

* साहसी, जो चाहता है
दुःख, मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है,
माँ उसीके पास आयी। (*वि.सा.*, ९.३३६)

* भले ही तुम्हारा सूर्य बादलों से ढक जाय,
आकाश उदास दिखायी दे,
फिर भी धैर्य धरो कुछ हे वीर हृदय,
तुम्हारी विजय अवश्यंभावी है।

शीत के पहले ही ग्रीष्म आ गया,
लहर का दबाव ही उसे उभारता है
धूप-छाँह का खेल चलने दो
और अटल रहो, वीर बनो!

जीवन में कर्तव्य कठोर हैं,
सुखों के पंख लग गये हैं,
मंजिल दूर, धुंधली सी झिलमिलाती है,
फिर भी अन्धकार को चीरते हुए बढ़ जाओ,
अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ!

(*विवेकानन्द साहित्य*, १०.१८८-८९)

* साहसी बनो और सत्य के दर्शन करो,
उससे तादात्म्य स्थापित करो,
छायाभासों को शांत होने दो;

यदि सपने ही देखना चाहो तो
शाश्वत प्रेम और निष्काम सेवाओं
के ही सपने देखो! (१०.१९१-९२)

* तोड़ो सब श्रृंखला,
उन्हें निज जीवन-बन्धन जान,
हों उज्ज्वल कांचन के
अथवा क्षुद्र धातु के म्लान,
प्रेण-घृणा, सद्-असद्,
सभी ये द्वन्द्वों के संधान!
दास सदा ही दास,
समादृत वा ताड़ित – परतंत्र,
स्वर्ण निगड होने से क्या वे
सुदृढ़ न बंधन यंत्र? (वि.सा.,१०.१७३)

* कहो, शांत हों सर्व,
शांत हों सचराचर अविराम,
क्षति न उन्हें हो मुझसे,
मैं ही सब भूतों का ग्राम।
(विवेकानन्द साहित्य, १०.१७४)

* सत्य न आता पास,
जहाँ यश-लोभ-काम का वास
(*विवेकानन्द साहित्य, १०.१७५*)

* छोड़ो विद्या, जप-तप का बल,
स्वार्थविहीन प्रेम-आधार एक हृदय का,
देखो शिक्षा देता है पतंग कर प्यार
अग्निशिखा को आलिंगन कर
(*विवेकानन्द साहित्य, ९.३२५*)

* तन्त्र, मन्त्र, नियमन प्राणों का,
मत अनेक, दर्शन विज्ञान,
त्याग, भोग, भ्रम घोर बुद्धि का,
'प्रेम-प्रेम' धन लो पहचान।
(*विवेकानन्द साहित्य, ९.३२४*)

□□□

उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर लो – यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है। अतएव इस ज्ञानरूप शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों अपना भविष्य गढ़ डालो।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य
तथा अन्य आध्यात्मिक प्रकाशन
प्राप्त करने के लिए लिखें
रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग)
रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर - ४४० ०१२
[illegible]

ISBN 978-93-83751-35-8

(H-54) Swami Vivekananda Ki Vani : ₹ 5.00